ISSN : 2249–9318
Peer-Reviewed and Refereed Research Journal
UGC Approved Journal No: 41389

अनुसंधान

(छायावाद पर केन्द्रित अंक)

वर्ष : 16 अंक : 15-16 जनवरी-दिसम्बर, 2020

संस्थापक
प्रो. धीरेन्द्र वर्मा
प्रधान सम्पादक
प्रो. हेरम्ब चतुर्वेदी

सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार गर्ग

सम्पादन सहयोग
डॉ. बिजय कुमार रबिदास, डॉ. सुरभि त्रिपाठी, डॉ. जनार्दन, डॉ. शिवकुमार यादव

प्रकाशक
अनुसंधान समिति
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

7. छायावाद-रहस्यवाद 49
डॉ. हमीरभाई पी. मकवाणा
प्राचार्य, श्री जे.एम.पटेल पी.जी.स्टडीज एण्ड रिसर्च इन ह्युमेनिटीज, आणंद
गुजरात

8. राष्ट्रीय चेतना-छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों के परिप्रेक्ष्य में 53
डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खडगपुर कॉलेज, खडगपुर
पश्चिम बंगाल

9. आलोचना के आईने में छायावाद 62
डॉ. प्रणु शुक्ला
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चौमूँ, जयपुर, राजस्थान

10. छायावाद में सौन्दर्य 68
डॉ. आनंद रणजीत बक्षी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चिखलदरा
अमरावती, महाराष्ट्र

11. छायावाद की वैचारिकी 75
डॉ. प्रवीण कुमार
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक
मध्यप्रदेश

12. छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर 90
डॉ. मुकेश कुमार
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, ओ.पी.जे.एस. विश्वविद्यालय, चुरु
राजस्थान

13. स्वच्छन्दतावादी-छायावादी काव्य-विवेचन 96
डॉ. राकेश सिंह
एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
उत्तर प्रदेश

छायावाद में सौन्दर्य

डॉ. आनंद रणजीत बक्षी*

छायावादी कवियों का प्रकृति की ओर झुकना, प्रकृति को इतना महत्त्व देना, प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को काव्य में प्रतिष्ठित करना और प्रकृति के सौन्दर्य को उद्घाटित करना यह सब आधुनिक विज्ञान का परिणाम है। विज्ञान ने प्रकृति के रहस्यों को जानने की चेष्टा की। धर्म ने प्रकृति के प्रति अन्ध श्रद्धा का भाव जगाकर जहाँ प्रकृति को जानने से रोका वहाँ विज्ञान ने विवेक के द्वारा उसका रहस्योद्घाटन किया। धार्मिक अन्धविश्वास ने जिस प्रकृति से मानव को बाँध रखा था, विज्ञान ने उसी को बन्धन से मुक्त किया। विज्ञान ने मनुष्य को प्रकृति से अलग कर फिर उसे प्रकृति के साथ अच्छी तरह से लगा दिया। जिस तरह नवीन औद्योगिक व्यवस्था ने वैयक्तिक परिवारों को सम्मिलित परिवार से अलग कर उनमें उच्च स्तर का परस्पर स्नेह सौहार्द स्थापित किया उसी तरह विज्ञान ने भी मनुष्य को प्रकृति के बन्धनों से मुक्त करके प्रकृति के प्रति उसकी रागात्मकता बढ़ा दी। छायावादी कविता अपनी आरम्भिक अवस्था में व्यक्तिनिष्ठ, अनुभूति-प्राण और सौन्दर्यमयी रही है, किन्तु बाद में जब कवियों की दृष्टि जीवन के अन्य पहलुओं पर गयी तो कवि व्यक्तिनिष्ठ परिधि से बाहर निकल आये लेकिन अनुभूति और सौन्दर्य की कल्पनामयी अभिव्यक्ति के कारण जीवन के बाह्य प्रसंगों को चित्रित करने वाली रचनाएँ भी एक अपूर्व चमक और शक्ति से सुशोभित हो गयी।''[1] उदाहरण के लिए-प्रसाद जी की 'प्रलय की छाया', निराला जी की 'राम की शक्ति पूजा' और पन्त की 'परिवर्तन' शीर्षक कविताएँ जीवन के मूर्त स्थूल आख्यानों और प्रसंगों को या प्रकृति की परिवर्तनशीलता के तथ्य को चित्रित करती हुई छायावादी काव्य की मूल भावमूलक संवेदना से जुड़ जाती हैं।

किसी वस्तु, पदार्थ, या विचारों के प्रति मुग्ध होना उस वस्तु, पदार्थ या विचारों के सौंदर्य पर निर्भर करता है। सौंदर्य का अनुभव मानव जीवन को सदा से आकर्षित करता रहा है। सौंदर्य का ज्ञान हमें हमारी इंद्रियां कराती हैं। इनसे होकर सौन्दर्य हमारे मन तक पहुंचता है। यह सौंदर्य हमें रंग, रूप आकार, स्पर्श और प्रिय लगने वाले व्यवहारों से प्राप्त होता है। व्यवहारों में भी तभी सौंदर्य होता है जब वे मधुर हो अन्यथा रूप, रंग, वर्ण की सुंदरता भी कुरूप लगती है। कहने का आशय यह है कि सुंदर वही होता है जिसकी हम कामना करते हैं। हमारी चेतना में प्रसन्नता, इच्छा, आनंद, ईर्ष्या को समझने के लिए उसकी अवधारणा को समझना समीचीन है। प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ हरदेव बाहरी के शब्दकोषानुसार 'सौंदर्य' का तात्पर्य है– 'सुंदरता', 'खूबसूरती'।' अंग्रेजी में 'सौंदर्य' का अर्थ 'beauty' है। यह सौंदर्य' का साधारण पर्याय है। उदाहरणतः प्रायः हम कहते हैं कि यह फूल बहुत सुंदर है या वे पक्षी बहुत सुंदर है। सुंदर देखने वाले की आंखों पर भी निर्भर करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सौंदर्य को देखने और परखने की अपनी-अपनी दृष्टि होती है। एक ही वस्तु किसी की दृष्टि में सुंदर हो सकती है तो किसी की दृष्टि में असुंदर किसी को प्रिय तो वही किसी को अप्रिय लग सकती है। पंचतंत्र में भी कहा गया है–

* सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चिखलदरा, अमरावती, महाराष्ट्र

किमप्यस्ति स्वभावेन सुंदरम् वाप्यसुंदरम्।
यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुंदरम्।।[2]

(कोई भी वस्तु स्वभाव से न तो सुंदर है और न असुंदर। जिसे जो अच्छा लगे उसे वही सुंदर है।) उदाहरण के लिए एक ही रंग की वस्तु कई लोगों को सुंदर लगती पर कुछ लोगों को वह रंग थोड़ा भी नहीं भाता।''

लांगफेलो सौंदर्य को उसकी सार्थकता के आधार पर परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार- ''उपयोगिता ही सच्चा सौंदर्य है।[3]

साहित्य में सौंदर्य का संबंध सौंदर्यशास्त्र से है जिसे अंग्रेजी में 'एस्थेटिक्स' (Esthetics) कहते हैं। ''सौंदर्यशास्त्र (Esthetics) का नाम देने वाले जर्मन विद्वान बौंमगार्टन थे। इन्होंने काव्य और कलाओं में निहित तत्व को सौंदर्यशास्त्र (Esthetics) कहा। सौंदर्यशास्त्र के इतिहास में उनका नाम इसलिए उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने सौंदर्य और कला का क्रमबद्ध विवेचन करने वाले शास्त्र को सौंदर्यशास्त्र की संज्ञा दी।'' डॉ. राजेंद्र मिश्र के अनुसार ''सौंदर्य शास्त्र हिंदी में 'एस्थेटिक्स' शब्द का पर्याय है इस शब्द का मुलाधार ग्रीक भाषा का 'अटोटिकौज' है, जिसका अर्थ ऐन्द्रिक सुख की चेतना है।'' इस अवधारणा के अनुसार सौंदर्य से हम सुख का अनुभव करते हैं। कान घ्राण, जिव्हा, त्वचा आदि हमारी इंद्रियां क्रमशः स्वरमाधुर्य, गंध स्वाद, संस्पर्श के सौंदर्य की चेतना से संबन्धित होती हैं। सौंदर्य को परिभाषित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है, ''प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण का नाम सौंदर्य है।''[4] सर्वथा आनंददायी होता है। यह सौंदर्य प्रकृति के विभिन्न रूपों में, मानव द्वारा बनाई गई कलाकृतियों में और साहित्यिक विचारों में विद्यमान रहती है। हमारे समक्ष एक प्रश्न के रूप में यह भी है कि प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाएं सदैव सुख ही नहीं देती। उदाहरण के रूप में दुखांत काव्य,नाटक, आदि भी कुरूप या असुंदर हो सकते हैं। परंतु रामविलास शर्मा इस आपत्ति का उत्तर देते हैं– ''कला में कुरूप विवादी स्वरों के समान हैं जो राग के रूप को निखारते हैं। वीभत्स का चित्रण देखकर हम उससे प्रेम नहीं करने लगते; हम उस कला से प्रेम करने लगते हैं जो हमें वीभत्स से घृणा करना सिखाती है''[5] कहने का अर्थ है कि सौन्दर्य का कार्य सुख प्रदान करना है। वस्तुतः सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन दर्शन के एक अंग के रूप होता है। सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य और उसकी अनुभूतियों का व्यापक वर्णन करता है। यह मानव के जीवन में, कलाओं में और प्रकृति में निहित सौंदर्य की व्याख्या करता है। सौंदर्य की सत्ता के विषय में एक प्रश्न यह भी है कि सौंदर्य बाह्य होता है या आंतरिक। तात्पर्य यह है कि सौंदर्य आत्मगत है या वस्तुगत। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार–सौंदर्य के दो पक्ष हैं:- एक बाह्य और दूसरा आंतरिक। बाह्य सौंदर्य इंद्रियों को प्रभावित करता है और आंतरिक सौंदर्य मन को, चेतना और आत्मा को। एक सुंदर स्त्री की मुखाकृति, रूप, रंग, आंखों की चमक, भौहों का कटाव, सभी अंगों की सुडौल आकृति, हमारी आंखों को मुग्ध कर लेती है; परंतु यही उसका व्यवहार कठोर, वाणी कर्कश और हृदय संकीर्ण और स्वार्थी तथा प्रवृति लोभी और क्रोधी होती है, तो क्षण भर में वह सारा बाह्य सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। उसका शारीरिक आकर्षण व्यर्थ हो जाता है, परंतु यदि बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ मन और हृदय तथा व्यवहार का भी सौंदर्य मिल जाता है, तो वहाँ सौंदर्य मन पर स्थाई प्रभाव डालता है।'' इनके अनुसार मन का सौंदर्य ही स्थायी होता है।

अंतः सौन्दर्य और बाह्य सौंदर्य

सौंदर्य के प्रति आकर्षण, मानव-चेतना की एक मूलभूत प्रवृत्ति है। मन या चेतन को जो प्रिय और आकर्षक लगे, दूसरे शब्दों में, जो उपयोगिता के मूल्य से ऊपर उठकर मानवीय चेतना को आनन्दायक लगे, वह पदार्थ 'सुन्दर' लगने से सम्बद्ध चित्तावस्था के सौन्दर्य की पहचान है। यह मानव चेतन में, किसी-न-किसी स्तर पर, सदैव विद्यमान रहती है, अतः इसे 'सौन्दर्य-वृत्ति' का नाम भी दिया गया है। सौन्दर्यानुभूति के समय की चित्तावस्था, सौन्दर्य की चेतना है और उसके प्रति कामना ही चेतना की सौन्दर्य-वृति कही जायेगी। सौन्दर्य में उपयोगिता की दृष्टि प्रधान नहीं होती। उसका लक्षण है- चित्त को तत्काल रमा लेना। यह रमणीयता की दशा है, जहाँ उपयोगिता का भाव, गौण और आनन्द का भाव प्रमुख होता है। इसके मूल में 'रति का भाव भी सन्निहित माना जाता है, पर यह रति शारीरिकता से सर्वत्र सम्बद्ध ही हो, यह आवश्यक नहीं। हम सौन्दर्य से प्रेम करते हैं, अतः प्रेम-भाव की वर्तमानता भी प्रासंगिक है, पर इस सौन्दर्य -प्रेम में, निरी कायिता से ऊपर एक व्यापक आत्म-विस्तार की एक स्थिति भी घटित होती है। यहाँ दाम्पत्य-भाव, स्थूल- बोध से ऊपर उठकर एक आध्यात्मिक आयाम का संस्पर्श भी प्राप्त करता है। यह शारीरिक क्षेत्र से उदात्त होकर, जीवन और जगत् की अन्यान्य भूमियों पर भी प्रसारित हो जाता है। रूपाकार भी सुन्दर और आकर्षक लगता है, पर स्थूल रूपाकार का सौन्दर्य, अपेक्षाकृत सीमित होता है। यह सौन्दर्य -भान जब स्थूलता से, सूक्ष्मता के प्रसाद और ऊर्ध्वता को प्राप्त कर लेता है, तो वह सौन्दर्य के अन्तरिम मूल्यों से ओतप्रोत हो उठता है।[6]

हमारे सामने प्रथमतः रूपाकृति का आकर्षण ही उपस्थित होता है, फिर क्रमिक और उत्तरोत्तर रूप से, वह वस्तुवत्ता के बहिरंग क्षेत्र भी हमारी आत्मिक चेतना में प्रविष्ट हो जाता है। सौन्दर्य के अनुभव की स्थिति, बाहरी रूप-रगों से उठकर व्यापक उत्कर्ष से जुड़ती है तो वस्तु - पदार्थों का वाह्य रूप गौण हो उठता है, और सौन्दर्य - द्रष्टा की अन्तर्दृष्टि, वाह्यकार के आकर्षण से आगे बढ़कर, वस्तु-स्थिति के भीतर निहित सौंन्दर्य से तदात्म और तदाकार होने को उत्सुक हो जाती है। सौन्दर्यानुभूति का मूल बोध तो आकर्षण, प्रियता और आनन्द से ही समन्वित होता है, पर 'स्थूल' और 'सूक्ष्म' का यह अन्तर , बाहर और भीतर के अन्तर की स्थिति का भी, जनक बन जाता है। सौन्दर्य-शास्त्रियों ने इस भेदान्तर को समझाने के लिए, इस अन्तर को 'वाह्य' और आन्तरिक सौन्दर्य की श्रेणियों में भी विभाजित किया है। यह विशुद्ध वैज्ञानिक प्रकार का विभाजन भले न हो, पर हमारी सौन्दर्यावस्था का एक व्यावहारिक विभाजित तो है ही। 'बहितौन्दर्य' व्यवस्था -विशेष की मान्य धारणाओं से भी प्रभावित होता है, जब कि 'अन्तः - सौन्दर्य' की चेतना, व्यक्ति -सापेक्ष्य पर निर्भर होती है। सौन्दर्यानुभूति से कोई भी प्रकृति जन विरहित नहीं, पर वह उसकी निजी रुचि प्रचलित व्यवस्था के सौन्दर्य मानदण्डों से कितनी आबद्ध है और कितनी स्वतंत्र और विलग- यह तथ्य, व्यक्ति-विशेष की सौंन्दर्य - चेतना का निर्धारक होता है। सामान्य व्यवस्था के मूल्य-मानों से प्रभावित और चालित होने की स्थिति में, सौन्दर्य-दर्शकों के वर्ग भी हो सकते हैं और एक वर्ग-श्रेणी के द्रष्टाओं में सादृश्य की सम्भावनाएँ अधिकतम हो जाती है। व्यवस्था -विशेष के आबन्ध से मुक्त व्यक्ति की सौन्दर्य-चेतना, पूर्व व्यवस्था के निर्देशों से मुक्त होकर, जीवन-जगत के पदार्थों में अपनी प्रियता-अप्रियता का चयन करती है, अतः अन्तः सौन्दर्य के दर्शन में व्यक्ति-व्यक्ति की अनुभूतियों में जहाँ अन्तर के लिए अधिक अवकाश होता है, वही समान-जीवन-बोध के आधार पर, अन्तःसौन्दर्य-दर्शकों

का एक वर्ग भी बन जाता है, जहाँ रुचि - वैभिन्नता के परिहार के साथ, एक सदृशता भी परिलक्षित होने लगती है।

यही कारण है कि व्यवस्था-परिवर्तन की स्थितियों में, नये सौन्दर्य-बोध की सम्भावनाएँ वृहत्तर हो जाती है। इस स्तर पर एक नया सौन्दर्य -बोध लेकर अवतरित होती है। नयी व्यवस्था के सन्दर्भ, नये सौन्दर्य -बोध के नये प्रतिमान भी सृजित करते हैं। अन्तः- सौन्दर्य की आनुभूतिक स्थितियों में , मानवतात्मा में नये बोध जगते हैं। वह पूर्व-व्यवस्था के सौन्दर्य-बोध को परिष्कृत भी करता है। वे वस्तु - पदार्थ, जो पूर्व - व्यवस्था में उपेक्षित और अनुमानित रूप में परिभाषित हुए रहते हैं, नयी सौन्दर्य-चेतना, उनके वाह्यकार के भीतर उतरकर, उनमें नये सौन्दर्य की खोज करता है। वस्तु -स्थितियाँ पुनः परिभाषित, पुनर्व्याख्यापित एवं पुनर्मूल्यांकित की जाती है। अन्तः-सौन्दर्य-द्रष्टा, वस्तुओं और व्यवस्थान के भीतर नयी मूल्यवत्ताओं का अन्वेषण करता और उन्हें, उन व्याख्यापित वस्तुओं के भीतर नये गुण-धर्मो के उद्घाटन के साथ, 'सुन्दर' के रूप में प्रस्थापित करता है। प्रकृति के रूप-रंग और 'सुरूप'-कुरूप' में मौलिक अन्तर भले ही, सम्भव न हो, पर वह उनके साथ पर्व-व्यवस्था द्वारा स्थापित सम्बन्धों को अस्वीकृत करने के उद्देश्य से, उनमें सौन्दर्य-असौन्दर्य की अनुभूति के अपने नये विधान निर्मित करता है। यह नयी व्यवस्था, 'फूल' और 'शूल' (सुन्दर-असुन्दर और प्रिय-अप्रिय) की एक नयी परिभाषा तो दे ही देता है। जैसे-सुख और 'दुःख की विलोमता तो अपने स्थान पर, सार्वभौम रहेगी ही, वैसे ही, 'सौन्दर्य'-'असौन्दर्य' की श्रेणियाँ भी नहीं बदलेगी, किन्तु इसी 'पुष्पता-शूलता' और 'सुन्दरता-असुन्दरता' की जीवनानुभूति तो होगी, पर उनके आधार, आश्रय और आलम्बन अवश्यमेव परिवर्तित हो जायेंगे। 'अन्तः- सौन्दर्य' की अवधारणा का एक और सन्दर्भ भी है, जहाँ प्रश्न उठता है कि 'सौन्दर्य' 'वस्तु गत' है या 'आत्म-गत? रुसो, वाल्टेयर, कान्ट, कालरिज , गेरे, श्लीगल, सोलिंग और वर्गसॉ- जैसे पाश्चात्य चिन्तक, सौन्दर्य को आत्म-गत अथवा द्रष्टा -व्यक्ति की आत्म-चेतना में निहित मानते हैं। इस विवाद में, अफलातून के 'आदर्शवाद' का भी सहारा लिया गया है, जहाँ वस्तु -जगत् स्वयं में, असत्य व्यक्ति की अनुभूति की छाया - मात्र के रूप में ग्रहण हुआ है। शंकर 'अद्वैत-वाद' भी वस्तु - जगत् को मिथ्या (असत्) और मायिक बोध अथवा आभाव आभा -मात्र माना गया है, पर सौन्दर्य की जीवन -जगत् में प्राप्त अनुभूति, मानवीय व्यवहार के धरातल की एक प्रतीति तो निश्चित ही है। सामान्य मानवीय धरातल पर, सौन्दर्य, वस्तु-गत रूप में भी अनुभव होता है, पर उसकी 'अनुभूति' तो चेतना के स्तर पर ही होती है। सौन्दर्यानुभूति का 'आलम्बन वस्तु-पदार्थ भले ही हों, उनका 'आश्रय' (अनुभूतिकर्ता) तो व्यक्ति की चेतना ही है। इस सौन्दर्यानुभूति की प्रक्रिया में, मानव की 'कल्पना'-वृत्ति भी संसुक्त होती है। इसमें मानव-चेतना में उद्भूत 'स्वयंप्रभ' बोध (इन्ट्युशन) भी सम्मिलित होती है। 'नव-नवन्मेशालिनी प्रतिभा' का भारतीय प्रत्यय, कल्पना से अधिक व्यापक शक्ति के रूप में अवधारित हुआ है, क्योंकि 'कल्पना'-शक्ति अधिकतर, 'चेतन-मनस' से ही अपना उपादान ग्रहण करती है, जबकि 'प्रतिभा' के नव-नवन्मेष में, अवचेतन-मन एवं और प्राक्तन संस्कारों की संचित निधि भी क्रियाशील मानी गयी है।[7]

छायावाद की परिभाषा- भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का शैशवकाल था, द्विवेदी युग उसका बाल्यकाल। प्रथम के स्वप्नों में भय संकुल विकलता थी तो दूसरे के स्वप्नों में कठोर आदर्शों एवं आचरण की बाध्यता थी। वहीं छायावादी साहित्य कठोर आदर्शों और आचरण की बाध्यताओं से उन्मुक्त

रचित परमाणु पराग शरीर,
खड़ा हो ले मधु का आधार।''[13]

छायावाद के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने भी सौन्दर्य की सुकुमारता का वर्णन किया है। छायावादी कवियों के सौन्दर्य वर्णन में प्राचीन संस्कृति के कवियों से बढ़कर युग के अनुकूल सौन्दर्य के सम्बन्ध में उत्कृष्ट उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ मिलती हैं।

प्रतीक सौन्दर्य-छायावादी कविता में प्रतीकों का प्राचुर्य है। प्रायः छायावादी कवियों ने प्राचीन प्रतीकों का (ऋग्वेद, कालिदास आदि के साहित्य में प्राप्त) पुनर्जागरण किया है। साथ ही नये-नये प्रतीकों को भी गढ़ा है, रचना की है। यह प्रतीक विधान अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए है। जैसे-हास, परिहास के लिए खिला हुआ पुष्प, ज्ञान के लिए प्रकाश, अज्ञान के लिए अन्धकार और साधना के लिए दीपक प्रतीक है। छायावादी कवियों ने प्राचीन प्रतीकों को आज के जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित कर दिया है। महादेवी जी की कविता में प्रतीकों का प्रयोग आध्यात्मिक जीवन की अनुभूतियों को बड़ी स्पष्टता के साथ व्यक्त करता है। छायावादी कविता में धवन्यात्मकता भरी पड़ी है-

''सुना यह मधु ने मधुरगुंजार।''[14]

छायावादी सौन्दर्य-बोध में दार्शनिक दृष्टिकोण-सौन्दर्य बोध में एक दार्शनिक दृष्टिकोण रहता है। यह जानना कवि का काम है कि वह कौन सी दार्शनिक दृष्टि है जिससे किसी युग में सुन्दरता का भाव जागृत रहता है। जैसे-यदि प्रगतिवादी युग को लें तो उसमें सौन्दर्य-बोध का दार्शनिक दृष्टिकोण सामाजिक यथार्थवाद है इसी प्रकार छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद के साहित्य में इस प्रवृत्ति का आविर्भाव आनन्दवाद की भूमिका पर हुआ है। यद्यपि आनन्दवाद का मूल शैवागम के आनन्दवाद में ही है किन्तु वह उसका अनुकरण-मात्र न होकर 20 वीं शताब्दी के अनुकूल उसका निखरा हुआ रूप है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदीयुग के बाद जो सौन्दर्यवाद का बोध हुआ उसके मूल में दार्शनिक दृष्टिकोण दो प्रकार के हैं, एक तो पाश्चात्य और दूसरा भारतीय। पाश्चात्य दृष्टिकोण रोमाण्टिसिज्म के आधार पर निर्मित हुआ है और भारतीय आनन्दवाद इत्यादि के आधार पर। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में छायावाद भारतीय सौन्दर्य की वह शाश्वत् प्रवृत्ति है जो 20 वीं शताब्दी में प्रकट हुई।

इस प्रकार ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति करते हुए छायावाद ने साहित्य में बहुत कुछ स्थायी महत्त्व की भी चीजें दी। उसमें अपने युग को प्रभावित करने के साथ-साथ भावी युगों के मानव-समाज को भी रसमग्न और प्रेरित करने की सामग्री है। छायावाद का स्थायित्व उसके व्यक्तिवाद में नहीं उसकी आत्मीयता में है, काल्पनिक उड़ान में नहीं, आत्मप्रसार में है, समाज भीरुता में नहीं, प्रकृति प्रेम में है प्रकृति पलायन में नहीं, नैसर्गिक जीवन की आकांक्षा में है, आवेगपूर्ण भावोच्छ्वास में नहीं, संवेदनशीलता में है, सौन्दर्य की कल्पना में नहीं, सौन्दर्य की भावना में है, स्वप्न में नहीं, स्वप्न की वास्तविक आकांक्षा में है, अज्ञात की जिज्ञासा में नहीं, ज्ञान के प्रसार में है, आदर्श में नहीं, यथार्थ में है, कल्पना में नहीं, वास्तविकता में है, दृष्टिकोण में नहीं, दृष्टि में है, उक्ति-वैचित्र्य में नहीं अभिव्यंजना के प्रसार में है। वास्तविकता की मात्रा के अनुसार ही छायावाद को हिन्दी साहित्य में भक्ति काव्य के बाद द्वितीय स्थान दिया जाता है और यह गौरव असाधारण नहीं है।

संदर्भ सूची

1. 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां', डॉ. नामवर सिंह, पृ. 13
2. 'छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना', डॉ. डी.पी. बरनवाल, पृ. 12
3. 'छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना', डॉ. डी.पी. बरनवाल, पृ. 13
4. 'छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना', डॉ. डी.पी. बरनवाल, पृ. 12
5. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', डॉ. नगेन्द्र, पृ. 529
6. साहित्यिक निबन्ध 'छायावाद और हिन्दी काव्य', डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 495
7. महादेवी की विवेचनात्मक गद्य- पृ. 61
8. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (छायावाद युग), डॉ. नगेन्द्र, पृ. 532
9. 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' (छायावाद), डॉ. नामवर सिंह, पृ. 13
10. 'छायावाद', डॉ. नामवर सिंह (प्रथम रश्मि), पृ. 12
11. 'छायावाद', डॉ. नामवर सिंह (प्रथम रश्मि), पृ. 12
12. 'छायावाद', डॉ. नामवर सिंह (पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश), पृ. 38
13. 'छायावाद', डॉ. नामवर सिंह (पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश), पृ. 40
14. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (छायावाद युग), डॉ. नगेन्द्र, पृ. 543